अध्याय पांच

अगर हम कभी अमीर थे, तो आज गरीब क्यों?

संसार की रचना से लेकर अब तक, सबसे महान् घटना, इसके रचनाकार के अवतार और मृत्यु के अलावा, इंडीज की खोज है। **-फ्रांसिस्को लोपेज दि गोमारा**

वर्षों बाद, मेरे दादाजी ने कहा कि उन्हें अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाते देख दुख हुआ। उन्होंने खुद को अपनी कोहनियों पर उठाया और मुझे ऊपर चढ़ने के लिए कहा और मैं फ्रंटियर मेल की ऊपर वाली बर्थ पर सोने की कोशिश करने लगा। "आजाद भारत की ताजा फिजा में सांस लेना अच्छा लगता है, किंतु तुम एक चीज जरूर याद रखो मेरे बेटे कि भारत सौ वर्षों में एक सुव्यवस्थित व शासित देश रहा है और पंजाब इसका अच्छा व्यवस्थित प्रांत रहा है। आखिर अंग्रेज ठीक से शासन चलाने में कामयाब क्यों नहीं रहे, क्योंकि इसके पीछे संसदीय प्रजातंत्र रहा था, जिसे भारतीय सिविल सेवा द्वारा नहीं चलाया जाता था।" उनके ये शब्द मेरे दिमाग में घूम रहे थे, मैं खिड़की से बाहर पंजाब के धूल व गेहूं की फसल से भरे खेतों को चांद की रोशनी में देख रहा था। कुछ देर बाद वह बोले, "हां, अंग्रेज घमंडी थे, लेकिन हमें सौ सालों की शांति की बहुत कम कीमत चुकानी पड़ी। अच्छी सरकार, रेलवे, नहरों का जल और संसार के सुव्यवस्थित कानून के रूप में, तुम मुझे राष्ट्र विरोधी कह सकते हो, लेकिन मैं ऐसा ही महसूस करता हूं।" मैंने पूछा, "यदि अंग्रेज अच्छे शासक थे, तो भारत गरीब क्यों था?" स्पष्ट तौर पर उन्होंने कभी इस बारे में सोचा नहीं था। उन्होंने कभी भी शासन को समृद्धि या विकास से नहीं जोड़ा। काफी

देर चुप रहने के बाद उन्होंने कहा कि वह यह नहीं जानते। "इसके लिए तुम अपने चाचा सतपाल से बात करना।"

अब मेरे पिताजी का तबादला उनके भाखड़ा बांध के दफ्तरों के नक्शों समेत दिल्ली के लिए हो गया था। हम पुराने किले की छत्रछाया में नई और हाल ही में दिल्ली के बीचों-बीच बनी काका नगर कालोनी में रहने लगे। हम लोग चारों ओर से अन्य इंजीनियरों के परिवारों व मेरे पिताजी के बांध के दफ्तर के सहयोगियों से घिर हुए थे। धीरे-धीरे अन्य सरकारी, व्यावसायिक और उद्योगों के समर्थक लोग वहां बसने लगे और कालोनी का विस्तार होने लगा। बढ़ती हुई नौकरशाही के रहने का इंतजाम करने की समस्या को हल करने के लिए सरकार ने दो मंजिला अपार्टमेंट बनाए। जो नीचे की मंजिल पर रहते थे, उन्हें साथ में छोटा-सा बगीचा भी मिल जाता था। और जो ऊपर की मंजिल पर रहते थे उन्हें छत मिलती थी जो उन दिनों काम आती जब लोग गर्मियों की रात में एअरकंडीशनर न होने की वजह से सौ डिग्री फारेनहाइट की गर्मी में बाहर सोते थे। कालोनी के साथ बहुत ही अच्छे खेल के मैदान व घास के छोटे-छोटे चौकोर पार्क बने हुए थे, जबकि वह लोक निर्माण विभाग का औसत निर्माण था।

दिल्ली में आने के बाद, मेरी मां की पहली प्राथमिकता हमारा दाखिला अच्छे स्कूलों में कराना था। कुछ समय की खोज के बाद उन्होंने निर्णय लिया कि मॉडर्न स्कूल, बाराखंबा रोड ही उपयुक्त है। यह आधुनिकता और पारंपरिकता का सही मिश्रण था, लेकिन जो महत्वपूर्ण था, वह यह कि इसका स्तर बहुत ऊंचा था। यह हमारे शिमला के स्कूल जैसा पाश्चात्य ढंग का नहीं था। मां महसूस करती थीं कि हमें गणित और हिंदी में सुधार की आवश्यकता है जो कि हमारी अभी तक की शिक्षा में कमजोर बिंदु थे। सवाल यह था कि हम कैसे आधुनिक हो सकते थे।

हमारे पास न तो पैसा था और न ही प्रभुत्व। किंतु मां में दृढ़ इच्छाशक्ति थी। वह सोमवार की सुबह स्कूल आईं, लेकिन प्रिंसिपल नहीं मिले। वह लंच टाइम तक उनका इंतजार करती रहीं।

मंगलवार की सुबह को भी यही घटा। वह अपनी हार महसूस करती हुई घर आ गईं और दोपहर-भर रोती रहीं। बुधवार की सुबह उन्होंने दुबारा प्रयास किया। अंततः गुरुवार को प्रिंसिपल ने दया कर उन्हें अंदर बुलाया। प्रिंसिंपल को स्कूल की कठिन पढ़ाई में हमारी सफलता पर संशय था लेकिन मां ने उन्हें हमारा टेस्ट लेने को कहा। हम टेस्ट में ठीक-ठाक रहे और हमें स्कूल में परखने के आधार पर रख लिया गया। यह सब होने के बाद हम सबने अपनी पहली परीक्षा में उम्मीद के अनुसार अच्छा परिणाम दिया। अनिच्छा से प्रिंसिपल ने मेरी मां से कहा कि उसने आपके साथ गलत व्यवहार किया है।

आज भारत के हर मध्यवर्गीय अभिभावकों को इस चिंता और अपमान से गुजरना पड़ता है। यह दुख की बात है कि मध्यवर्ग बढ़ रहा है, किंतु अच्छे प्राइवेट स्कूल उनकी पहुंच से बाहर होते जा रहे हैं। आजाद भारत में शिक्षा की कहानी एक दुखद व्यथा है। आजादी के बाद सरकार ने बड़ी संख्या में स्कूलों की स्थापना की लेकिन ये हर तरह से बेकार हैं, जिस कारण मध्यवर्ग के लोग इनसे बचना चाहते हैं और कुछ प्राइवेट स्कूलों के लिए छीना-झपटी करते हैं। जिसने कि अभाव की स्थिति पैदा की और दाखिले के लिए या तो आपके पास पैसा हो या जान-पहचान हो। यदि मध्यवर्ग की यह दुर्दशा है, तो आम लोगों की इससे भी बुरी दुर्दशा होगी। राज्य शिक्षा की मात्रा और दर्जा दोनों ही उपलब्ध कराने में असफल रहा। भूमंडलीय शिक्षा के दिखावटी प्रेम के बावजूद चालीस प्रतिशत भारतीय अशिक्षित हैं।

हमने अपनी इतिहास की कक्षा में पढ़ा था कि कोलंबस भारत के अमीरों की खोज में निकला था और उसने अमेरिका को खोज लिया। यह सोचने की बात है कि उसने भारत को खोजा और यहां के लोगों को भारतीय कहा, जो नाम कौंधता है वह भाषा-विज्ञान संबंधी भ्रम पैदा करता है। मेरी कल्पना को स्कूल में किसने पकड़ रखा था? क्या भारत की महान समृद्धि और वैभव ने जिसने यूरोपियों को भारत की खोज के लिए महान यात्राएं करने के लिए विवश किया। गोलकुंडा

यूरोपीय लोगों के मस्तिष्क में भारतीय समृद्धि का चिन्ह बन गया था। वे उसे जानना चाहते थे। भारत की बौद्धिकता ने भी यूरोप के मस्तिष्क को आकर्षित किया। जर्मनी के महान दार्शनिक जी.डब्ल्यू.एफ. हीगेल ने लिखाः "प्राचीन समय से सभी राष्ट्रों के लोग इस भूमि के आश्चर्यचकित और कीमती खजाने के बारे में जानने के इच्छुक रहे हैं, जो पृथ्वी के आश्चर्यों में से एक है, जैसे, प्रकृति का खजाना- मोती, हीरे, इत्र, हाथी, शेर आदि और बुद्धि का खजाना। वह रास्ता जो इस खजाने से होता हुआ पश्चिम को जाता था। भारत हमेशा विश्व में ऐतिहासिक महत्व रखता आया है, जो कि राष्ट्र के भाग्य से बंधा हुआ है।"

पुर्तगालियों को उस समय धक्का लगा जब उनके शत्रु स्पेन ने उनके वहां रहते हुए अमेरिका की खोज का पुरस्कार जीता। इसके बाद पांच साल तक वह अपमान सहन करते रहे और 1497 में उन्होंने वास्कोडिगामा को एक अलग रास्ते से चार जहाजों के बेड़े के साथ अफ्रीका की ओर से असली भारत की खोज करने के लिए भेजा। दो साल की समुद्री यात्रा के बाद भी उन्हें व्यावसायिक सफतला नहीं मिली और वे अपने 170 जहाजियों में से 116 को खो बैठे। भारतीयों को यूरोप की सस्ती वस्तुओं और कपड़ों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह उनसे कई गुना अच्छा कपड़ा और वस्तुएं बना सकते थे। किंतु वास्कोडिगामा अपने साथ कुछ और जरूरी चीजें ले गया था। उसने पुर्तगाल के किंग मैनुअल को बतायाः "बड़े शहर, बड़ी बिल्डिंगें, नदियां और विशाल जनसंख्या।" उसने मसालों, जवाहरातों, कीमती पत्थरों और सोने की खानों के बारे में भी बताया। उसका सोचना था कि उसने भारत की पौराणिक संपदा को खोज लिया है।

अंग्रेज इस संपदा को सौ साल बाद तब पा सके, जब स्पेन और पुर्तगाल राज्य के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित हुए। अंग्रेज इस भयानक साम्राज्य से युद्ध कर रहे थे। और उन्होंने 1588 में चमत्कारपूर्ण तरीके से स्पेन के अपराजित सशस्त्र सैन्य जलपोत समूह को मार भगाया। अंग्रेज-इंडीज में पहले व्यापार की जगह की लूट-पाट करने आए। वे पश्चिम में पुर्तगालियों को

नअरअंदाज करते हुए पूर्व में कोरोमंडल तट पहुंचे, जहां वह मद्रास में स्थापित हुए। मद्रास को खोजने के बाद उन्हें लगा कि लूट की जगह व्यापार करना ज्यादा उचित है और वे मालाबार तट चले गए। पुर्तगालियों से सावधानीपूर्वक बचते हुए मुगल साम्राज्य के समृद्ध सूरत बंदरगाह पर अपना व्यापार क्षेत्र स्थापित किया। इसके बाद वे डरते-डरते आगे बढ़े और उन्होंने एक खाली द्वीप को कब्जाया, जो आगे चलकर मुंबई जैसा व्यावसायिक शहर बना। पूर्वी तट पर वे उत्तर की ओर बढ़े जहां उन्होंने कलकत्ता जैसे व्यावसायिक शहर की स्थापना की। अंग्रेजों ने पाया कि भारत विश्व में सूती धागा और वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र में अग्रणी था। भारत का कपड़ा उद्योग अपनी बेहतरीन किस्म और गुण के लिए अद्वितीय है। यह उद्योग न सिर्फ बड़ी मात्रा में घरेलू मांग की ही पूर्ति करता था, बल्कि लगभग इसका आधा भाग हिंद महासागर के रास्ते दक्षिण एशिया और चीन पहुंचता था। सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में उन्होंने पाया कि यह विशाल बाजार यूरोप की बड़ी मांग को पूरी कर सकता है। इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक विश्व कपड़ा उद्योग पर भारत का एक चौथाई अधिकार हो गया था। "भारत का सूत यूरोप के कपड़ों में तब्दील हो गया था... जो ऊन की अपेक्षा सस्ता और हलका था, अधिक सजावटी (रंगाई और छपाई के लिए), धोने और बदलने में आसान सूती कपड़ा एक नए विश्व के लिए बनने लगा था। यहां तक कि ठंडे प्रदेशों में भी सूती कपड़ा अंदर पहनने वाले कपड़ों में तब्दील हो गया था। जो अधिक आरामदेह, साफ और स्वास्थ्य के लिए बेहतर था।" अंग्रेजों ने भारत से सूत्री कपड़ा उद्योग के बारे में सीखा और जल्दी ही उन्होंने आंकड़े बदल दिए। ब्रिटेन के कपड़ा उद्योग को औद्योगिक क्रांति मिली, किंतु लाखों भारतीय बुनकर परिवार बर्बाद हो गए। सोलहवीं शताब्दी के अंत तक मुगल साम्राज्य के दौरान भारत की समृद्धि लगभग दस करोड़ लोगों के साथ थी। भारत में कृषि भूमि की प्रचुरता होते हुए भी यह किसी मायने में अपने समकालीन समाज व पश्चिमी यूरोप से पीछे नहीं थी। इसकी उत्पादकता भी तुलनीय थी। जीवन निर्वाह करने वाले भी

अच्छा ब्याज पा लेते थे। भारत के पास न सिर्फ बड़ी संख्या में कपास उगाने वाले किसान ही थे, बल्कि जमींदारों, कोर्ट और अभिजात वर्ग के लिए ऐश्वर्य की वस्तुएं बनाने वाले भी थे। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था अच्छा वित्तीय अधिशेष उत्पादित कर लेती थी। "मुगल बादशाह औरंगजेब (1659-1701) ने अपना सालाना राजस्व लगभग 450,000,000 डॉलर घोषित किया था, जो उसके समकालीन लुई चौदहवें से दस गुना अधिक था। 1638 के अनुमान के अनुसार मुगल कोर्ट ने भारत के संचित खजाने को लगभग पंद्रह लाख डॉलर आंका।" वित्तीय अधिशेष ने मुगल बादशाहों को बेहतरीन और अद्वितीय ताजमहल जैसे ऐतिहासिक स्मारक बनाने के लिए प्रेरित किया।

मेरे चाचाजी और राष्ट्रवादियों का कहना सही था कि भारत अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत तक विश्व में अग्रणी उत्पादक देश था। उत्पादन से अभिप्राय है उस समय के हथकरघा और हस्तकला उद्योग। एंगस मैडिसन के अनुसार, भारत का विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में 22.6 प्रतिशत का हिस्सा था। पॉल बाइरोच ने पुष्टि की कि विश्वव्यापी व्यापार के कपड़ा उद्योग का पचीस प्रतिशत का हिस्सा था।

"अधिक महत्वपूर्ण था यहां का बहुत बड़ा व्यावसायिक क्षेत्र, जिसमें बहुत बड़े बाजार और ऋण ढांचे के साथ कारीगर लोगों व अन्य संपन्न व्यावसायिक वर्ग की कोई कमी नहीं थी।'' भारतीय उत्पादन पद्धति और औद्योगिक एवं व्यावसायिक संगठन विश्व के किसी भी बाजार में प्रतिस्पर्धा में भाग ले सकते थे। व्यापारियों की पूंजी कई दलालों, ब्रोकरों और अन्य लोगों में बंटी हुई थी जो उसे भिन्न-भिन्न तरीकों से दूसरों को उपलब्ध कराते, जिनका व्यापार एशिया के कई देशों तक फैला हुआ था। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उस समय के अंग्रेज यात्रियों ने पाया कि भारत एक समृद्ध देश और व्यावसायिक अर्थव्यवस्था भी पिछड़ी और सुस्त नहीं है।

यहां प्रश्न यह उठता है कि विशाल वित्तीय अधिशेष, असीमित कृषि भूमि और लोग, विश्वस्तरीय कृषि उत्पादन और बड़ी संख्या में कारीगर-शिल्पी होने के बावजूद भी आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था भारत में पूरी तरह क्यों नहीं घुल-मिल पाई? इसके स्थान पर कैसा तो एक कंगाल देश बन गया ? मजबूत और बढ़ते व्यावसायिक क्षेत्र, बाजार शक्तियों और विस्तृत विदेशी व्यापार के बावजूद यह सच है कि अठारहवीं शताब्दी में भारत तकनीकी, संस्थानों और विचारों सभी मामलों में यूरोप से पीछे ही रहा। न ही कृषि में क्रांति हुई और न ही कोई वैज्ञानिक क्रांति ही हुई। "बाजार में भारतीय उत्पादकों की प्रतियोगितात्मक शक्ति वितरण तंत्र पर आधारित है... और दूसरी ओर भारतीय हस्तकला के कारीगर तकनीकी तरक्की का विकल्प भी नहीं बन सकते हैं।" बढ़ते व्यापार के बावजूद भी भारतीय व्यापारी अपने उत्पाद में सुधार के तरीकों को न बदलकर बाजार ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सके। इस तरह का लचीला मस्तिष्क वैज्ञानिक दिमाग का साथ चाहेगा ही।

अधिशेष और व्यापार के होने पर भी किसान बहुत गरीब थे। फ्रांस के एक चिकित्सक फ्रैंकॉइस बर्नियर ने भारत में बारह साल बिताए और उसने आम लोगों की गरीबी के बारे में लिखा। उसने उनके जर्जर मकानों, अपमानित जिंदगी और कुछ थोड़े से अमीरों और कंगालों के बीच नाटकीय अंतर का उल्लेख किया था क्योंकि मुगलों की प्रवृत्ति लुटेरों की-सी थी। वे भूमि की दशा सुधारने के लिए बहुत कम सहायता करते थे। अच्छा व्यापार होने के बावजूद भी व्यापारी करों के डर से अपनी संपत्ति को छुपाए रखते थे।

इसका कोई आसान उत्तर नहीं है कि देश समृद्ध होते हुए भी उसके लोग गरीब थे। इसके लिए हम यह सफाई दे सकते हैं कि अधिक जनसंख्या होने के कारण सस्ते मजदूर मिल जाते थे। जब मजदूरों की पूर्ति लचीली हो तब यह सस्ता पड़ता है कि मशीन में खर्च करने की बजाए लोगों से काम लिया जाए। यह अठारहवीं शताब्दी में भी सच था और आज भी सच है। एक

अंग्रेजी समीक्षक ने 1807 में लिखा, "भारत में यह प्रयास कभी-कभार ही होता था कि जो काम आदमी कर सकते थे, उन्हें मशीनों से करवाया जाए।"

यहां यह बताना जरूरी है कि लगभग 250 साल पहले राष्ट्रों की आय के बीच भी इतनी असमानता नहीं थी कि जितनी आज है। पॉल बाइरोच के अनुसार भारत (चीन) और यूरोप के बीच डेढ़ या दो से एक का अंतर था। भारत और इंग्लैंड के आर्थिक भविष्य ने उन्नीसवीं शताब्दी में पलटी खाई। भारत एक जगह स्थिर रह गया और इंग्लैंड ने औद्योगिक क्रांति का मजा चखा। इसका कारण भारत का इंग्लैंड का उपनिवेश होना नहीं था किंतु इंग्लैंड ने औद्योगिकीकरण के अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त कर ली थीं। ये कई प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थानों, विचारों और मूल्यों से ग्रस्त था, जिन्होंने इसे तकनीकी अवसर के अच्छे मौके प्रदान किए।

अब हम असली प्रश्न पर वापस लौटते हैं। अगर हम कभी धनी थे आज निर्धन क्यों? अपने दादाजी की आज्ञा का पालन करते हुए मैं अपने चाचाजी सतपाल से मिलने गया। वह हमेशा ही मेरे दादाजी के चहेते रहे थे। वह रामनगर से आए थे, जहां अंग्रेजों और सिखों के बीच 1849 में लड़ाई हुई थी जिससे अंग्रेजी सरकार को पंजाब में आने का रास्ता मिला था। सतपाल स्थानीय दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल में पढ़ते थे और उसके बाद लयालपुर सरकारी कॉलेज में गए जहां उन्होंने सारे पुरस्कार जीते। मेरे दादाजी उनके लिए एक सुंदर भविष्य के सपने देखते थे। एक दिन खतरनाक ढंग से उन्होंने पाया कि सतपाल मार्क्सवादी हो गया है। यह हमारे परिवार के लिए बहुत बड़ा धक्का था। प्रतिष्ठा और समृद्ध जीवन का सपना टूट गया था।

आजादी के बाद सतपाल अमृतसर के निकट चेहरता में एक मजदूर नेता बन गए। मजदूरों के वह चहेते थे, लेकिन उद्योगपति उनसे खौफ खाते थे। अपनी मेहनत से बनाए हुए दो कमरों के घर में उन्होंने मेरा स्वागत किया। सतपाल ने अंग्रेजी उपनिवेशवाद का बहुत ही भयावह चित्र

बनाकर टांग रखा था। वह बोले, बंगाल पर कब्जा करने से पहले अंग्रेजों ने भारत को खूब लूटा। उनकी (लंकाशायर) मिलों ने हमारे हथकरघा उद्योग को बेकार कर दिया और उन्नीसवीं शताब्दी में लाखों बुनकर बेकार हो गए। परिणामस्वरूप हमारा कपड़ा निर्यात का व्यापार आकाश से धरती पर आ गिरा। (ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति शुरू होने से पहले) इसके साथ ही देसी बैंकिंग प्रणाली भी, जो निर्यात को वित्तीय मदद करती थी, बर्बाद हो गई थी, क्योंकि उपनिवेशी सरकार ने आयात-निर्यात कर की सीमा को नहीं बढ़ाया इसलिए भारतीय उपभोक्ता भी अंग्रेजी मिलों द्वारा निर्मित सस्ते वस्त्रों की ओर मुड़ गए और लाखों हथकरघा मजदूर दयनीय अवस्था में पहुंच गए। अंग्रेजों के उपनिवेशवादी शासन ने भारत को उद्योगों से विहीन कर दिया और भारत, बुनाई के निर्यातक से हटकर कच्चे माल का निर्यातक बन गया। सतपाल ने विलियम बैंटिक का उदाहरण देते हुए बताया जिसने एक जगह टिप्पणी की है, "भारतीय जुलाहों की हड्डियां भारत के मैदानों की तरह रंगहीन रही थीं।"

मैंने अपने चाचाजी को बीच में ही रोकने वाला था कि उनकी आकर्षक कश्मीरी पत्नी विमला हाथ में दो लस्सी के गिलास लेकर कमरे में आईं। वह एक उत्साही कार्यकर्ता व राज्य विधान-मंडल की सदस्यता भी थीं। वे अपने विद्यार्थी काल में 1940 में लाहौर में मिले थे। उनके वामपंथी दायरे में विमला अपने तीखे नयन-नक्श, दृढ़ विश्वास और चकाचौंधपूर्ण पृष्ठभूमि के लिए सराही जाती थीं।

विमला के पिता बी.बी.सी. में काम करते थे। उनकी माताजी इटली के मोंटेसरी अध्यापन प्रणाली प्रशिक्षित थीं और सर गंगा राम कालेज में पढ़ाती थीं। वे इंडिया काफी हाउस में मिलते थे और फैज़ अहमद फैज और इक़बाल की शायरी सुनते थे। मैंने सोचा कि यह एक प्रकार की चाल थी कि वह उसे स्वयं से शादी करने के लिए मना पाया, जबकि उसको बहुतों ने लालच दिया गया होगा।

लस्सी पीने के बाद सतपाल कृषि की ओर उन्मुख हुए। ब्रिटेन ने भारतीय किसानों पर भारी कर लगा दिए थे। इसने किसानों को नुक्सान के लिए पुरानी राजस्व प्रणाली को खत्म कर दिया। जिसके अंतर्गत मानसून आए या न आए राजस्व देना जरूरी कर दिया। कृषि अपनी जमा करने की योग्यता खो बैठी थी और उन्नसवीं शताब्दी के चतुर्थांश में अकालों की बाढ़ आ गई व बुरे वर्ष शुरू हो गए। सबसे बुरा 1896-97 में रहा, जिसमें 960 लाख लोग प्रभावित हुए और लगभग पचास लाख लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे। यूरोप के लोगों ने जिन क्षेत्रों में जूट, नील, कपास, चाय और कॉफी की फसल को बढ़ावा दिया वहां खाद्यानों की बुरी तरह से कमी हो गई। यद्यपि ये नकदी फसलें लाभदायक थीं, इससे प्राप्त बचत यूरोप के लोगों के पास ही रही और उन्होंने इसे इंग्लैंड स्थानांतरित कर दिया। रेल ने फसलों को लंबी दूरी तक ले जाकर उनके व्यावसायीकरण में मदद की और विशाल राष्ट्रीय बाजार ने सारी बचत को चूस लिया, जिसे पहले किसान अपने बुरे दिनों के लिए बचाकर रखते थे। इस प्रकार पूरी सदी के लिए कृषि का उत्पादन स्थिर रहा।

भारत में साम्राज्यवाद की स्थापना की बहुत बड़ी कीमत चुकाने के बाद ब्रिटिश सरकार राजस्व बचत को अपने साथ अपने घर ले गई। भारत उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग और बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में काफी बड़े स्तर पर आयात की अपेक्षा निर्यात ज्यादा करता था। ब्रिटेन भारत के व्यापारिक अधिशेष का इस्तेमाल अन्य विश्व के साथ अपने वित्तीय घाटे को पूरा करने के लिए करता था। सतपाल के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद का आठ प्रतिशत भाग ब्रिटेन को जाता था जो हमारी धनसंपत्ति का महाकाय खर्च प्रदर्शित करता है। इस प्रकार ब्रिटेन हमें कंगाल करता रहा और धन उसकी औद्योगिक क्रांति में लगता रहा।

इस मामले में मैंने कहा कि अब हम आजाद हैं और इंग्लैंड अपना उपनिवेशवाद खो चुका है। भारत अमीर बन रहा है और इंग्लैंड निर्धन। क्या यह सही है? उन्होंने सिर हिलाया। मेरे चाचाजी

ने उपनिवेशवाद के दौरान भारत की गरीबी का श्रेष्ठ मामला प्रस्तुत किया था। सतपाल और विमला की नि:स्वार्थ अखंडता और सरलता ने मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ा। दोपहर के खाने के बाद, विमला अपने जवानी के दिनों की फोटो की एक एलबम लेकर आईं। जिनमें से एक तस्वीर बंगाल के गांव में ली गई थी। यह दर्शाता है कि सतपाल और विमला आदर्शवाद के दो चेहरे थे। जिन्होंने 1943 में भयंकर अकाल के दौरान बहुत मदद की थी। दूसरी तस्वीर विमला को 1947 प्राग में दर्शा रही थी। जहां वह अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद की नेता बनकर पहले विश्व युवा महोत्सव में गई थीं। उनकी आंखों में सफलता थी क्योंकि वह विश्व प्रजातांत्रिक युवा संघ की उपप्रधान चुनी गई थीं। उनका चेहरा आश्चर्यजनक आत्मविश्वास जाहिर कर रहा था जो उनके अंतरराष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन की युवा नेता बनने के कारण था, उस समय उनके पास सभी कारण थे, यह मानने के लिए कि सचाई उसकी तरफ है और साम्यवादी एक दिन संसार पर शासन करेंगे। मैंने 1968 के वसंत के उस दिन के बारे में सोचा जब सोवियत टैंक प्राग में आजादी को कुचल रहे थे। फिर मैंने विमला का खुश चेहरा तस्वीर में देखा।

सतपाल और विमला के साथ मेरी मुलाकात ने मुझे आर्थिक इतिहास पढ़ने के लिए प्रेरित किया और मैंने पाया कि अधिकतर विद्वान मेरे चाचाजी की भारतीय गरीबी के श्रेष्ठ विश्लेषण से सहमत हैं। वह सहमत थे कि ब्रिटेन की व्यापारिक नीतियों ने उत्पादों के आयात और कच्चे माल के निर्यात को प्रोत्साहित किया था और किसानों से ज्यादा कर लेकर ब्रिटेन ने भारतीय कृषि को सुदृढ़ किया।

जैसे-जैसे वर्ष गुजरते गए इतिहासकारों की नई पीढ़ी उभरी जिन्होंने पुरानी व्याख्याओं को चुनौती देना शुरू कर दिया। इन विद्वानों ने ऐतिहासिक आंकड़ों को प्रेषित करने में अपना कीमती समय लगाया। उनमें से एक ने तय किया कि भूमिकर अत्यधिक न हो। 1900 में यह केवल कृषि उपज का पांच प्रतिशत था जो प्रतिव्यक्ति कर के भार से भी आधे से कम था। दूसरी सहमति

यह थी कि भारत से ब्रिटेन की ओर धन का प्रवाह हुआ था। मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी में, मगर यह सिर्फ सकल घरेलू उत्पाद का डेढ़ प्रतिशत भाग था। इतिहासकारों ने बहस की कि भारत ने ब्रिटेन को वास्तविक सेना और असैनिकों की सेवाओं और पूंजी निवेश की सेवा का भुगतान किया। इसी तरह ब्रिटिश संस्थापन को बनाए रखने के लिए ऊपरी कीमत, जो 'घरेलू खर्च' कहलाता है, बहुत कम थी। अगर भारत अपनी सेना और नौ सेना बनाए तो यह ज्यादा खर्चीला होगा। वह मानते थे कि भारत के पास भुगतान की जो बचत है, उसे ब्रिटेन अपने वित्तीय घाटे को पूरा करने के प्रयोग में लाता है, लेकिन वह कहते थे कि भारत को इसके लिए अंशतः मुआवजा दिया जाता, जो सोने और चांदी के रूप में भारत में आयात होता। जिसमें से थोड़ा भाग बहुमूल्य धातु का टकसाल में सिक्के (मुद्रा) बनने के लिए जाता और ज्यादातर निजी भारतीय हाथों में जाता। भारतीय हमेशा सोने और चांदी से सम्मोहित होते हैं। हालांकि रोमन प्लीनी ने भी यही देखा और विश्व में भारत को सोने में डूबा हुआ कहा।

पुनः अवलोकन की सबसे गंभीर ललकार राष्ट्रवादी धारणा की थी कि ब्रिटेन ने भारत को दोबारा औद्योगीकरण रहित कर दिया था। वे मेरे चाचाजी के साथ समहत थे कि उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय उद्योग का पतन हो रहा था। उन्होंने गणना की कि भारत 1830 में औद्योगिक उत्पादन का विश्व में 17.6 प्रतिशत भाग उपभोग कर रहा था जबकि ब्रिटेन का भाग सिर्फ 9.5 प्रतिशत ही था। 1900 तक भारत का हिस्सा घटकर 1.7 प्रतिशत रह गया और ब्रिटेन का हिस्सा बढ़कर 18.6 प्रतिशत हो गया। उन्होंने बहस की कि यह पतन तकनीक के कारण था। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति की मशीनों ने भारतीय वस्त्र उद्योग को नष्टकर दिया। इसी प्रकार यूरोप से और बाकी विश्व से परंपरागत हाथ से बने वस्त्र अदृश्य हो गए। पचास साल बाद भारतीय कपड़ा मिलों ने इन्हें नष्ट कर दिया। इस प्रकार भारतीय बुनकर तकनीकी रूप से अक्षमता के शिकार थे।

हथकरघा ने सारे विश्व में मिल से बने कपड़ों को रास्ता दिखाया और बुनकरों ने सभी जगह अपनी नौकरियां खो दीं। यहां तक कि भारत में भी। दुर्भाग्यवश भारत में ज्यादा बुनकर प्रभावित हुए क्योंकि भारत विश्व में कपड़े का सबसे बड़ा निर्माता था। यह उनकी महान विपत्ति और उनका दुख जो कि दरिद्रपन के कारण था। उससे दूर नहीं ले जा रहा था अगर ब्रिटिश शासन उनकी दुर्दशा पर कोमल हृदय होता तो भारत में व्यापार में बाधा नहीं आती। यह प्रभाव को लचीला कर देता और भारतीय हथकरघा वस्त्र को एक समय के लिए जीवित रखेगा। यह सच है कि ब्रिटिश सरकार ने अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में भारतीय कपड़े के खिलाफ बाधा उत्पन्न की।

1850 के बाद भारतीय उद्यमियों ने अपनी आधुनिक कपड़ा मिलों की शुरुआत की। 1875 तक भारत ने कपड़े का निर्यात करना फिर शुरू किया और धीरे-धीरे घरेलू बाजार को पुनः प्राप्त कर लिया। 1896 में भारत में संपूर्ण प्रयुक्त कपड़े की भारतीय मिलें सिर्फ आठ प्रतिशत भाग, 1913 में बीस प्रतिशत, 1936 में बासठ प्रतिशत और 1945 में छिहत्तर प्रतिशत की ही आपूर्ति कर पाती थीं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय और ब्रिटिश पूंजीवादियों ने बहुत लाभ कमाया। जबकि ब्रिटिश व्यापारियों ने अपने युध्दकालीन लाभ को प्रेषित किया, भारतीय व्यापारियों ने युद्ध के बाद के अपने उद्यमों में दोबारा निवेश किया। इस प्रकार लड़ाई के बाद भारतीय उद्योग तेजी से बढ़ने लगे।

जी.डी. बिड़ला, कस्तूरभाई लालभाई और दर्जनों उद्यमियों ने युद्ध के मध्य के सालों में महत्वपूर्ण औद्योगिक साम्राज्य बनाया। 1913 और 1938 के मध्य उत्पादन की वृद्धि 5.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, विश्व की औसत 3.3 प्रतिशत से ज्यादा। अंत में, ब्रिटिश सरकार ने 1920 में शुल्क से सुरक्षा प्रदान की। इसने उद्योगपतियों को फैलने और विविधता उत्पन्न करने में मदद की।

बिड़ला ने कपड़े के अलावा सीमेंट, जूट और कागज के क्षेत्र में भी कदम रखा। अन्य शिपिंग (हीराचंद), सिलाई मशीन (श्रीराम) और घरेलू एअरलाइन (टाटास) में बंट गए।

द्वितीय विश्वयुद्ध तक, प्रथम विश्वयुद्ध से पहले की ब्रिटिश व्यापार की प्रधानमता टूट चुकी थी और भारतीय उद्यमी अब मजबूत हो गए और वह इस स्थिति में थे कि प्रस्थान करते हुए विदेशियों के व्यापार को खरीद सकें। उद्योग का भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 3.8 प्रतिशत (1913 में) से दुगुना होकर 7.5 प्रतिशत (1947) हो गया। इसने भारत के व्यापार की संरचना को भी प्रभावित किया। निर्यात में उत्पादकों का हिस्सा 22.4 प्रतिशत (1913 में) से बढ़कर तीस प्रतिशत (1947) हो गया जबकि आयात में उत्पादकों का हिस्सा 79.4 प्रतिशत से घटकर 64 प्रतिशत रह गया। फिर भी औद्योगिक रोजगार क्रम में नहीं बढ़ा। हस्तशिल्पियों, बुनकरों की नौकरियों के खोने के दुख को आधुनिक उद्योग कम नहीं कर पाए।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने ब्रिटेन को भारत के आर्थिक महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर बताया। उनका सोचना था कि भारतीय साम्राज्य बहुत लाभदायक है। उन्हें सिसिल रोड्स से विचार मिला जो कि उन्नीसवीं शताब्दी, का एक महान साम्राज्यवादी था। वह कहता था कि "साम्राज्य एक डबल रोटी है और मक्खन एक प्रश्न... (हमें) देश की बची हुई जनसंख्या को बसाने के लिए नई जगहें खोजनी चाहिए, जो फैक्टरियों और खानों में उत्पन्न सामान को नए बाजार प्रदान करे।" बीसवीं शताब्दी में, चर्चिल इस विचार के मार्गदर्शक प्रवक्ता थे। नि:संदेह कट्टरपंथी भी इसमें विश्वास करते थे, लेकिन मजदूर पार्टियों के वामपंथियों ने भी ऐसा ही सोचा था। बेविन ने 'हाउस ऑफ कॉमन्स' को बताया, "अगर ब्रिटिश साम्राज्य गिर जाए... इसका मतलब यह है कि हमारे मतदाताओं के जीवन का स्तर बहुत अधिक गिर जाएगा।" सच्चाई यह है कि भारतीय उपनिवेश ब्रिटेन को अधिक लाभदायक नहीं था। अठारहवीं शताब्दी में अमानवीय शोषण खत्म हो गया था। ब्रिटेन अगली शताब्दी में बढ़ते वैभव के लिए नए विश्व के साथ अपने मुक्त व्यापार और

अमेरिका में अपने निवेश के लिए आभारी था। अगर यहां व्यय था, तो वह अंग्रेजी कंपनियों से अमेरिकी लाभांश के स्थानांतरण के कारण था। नि:संदेह चाय और नील की रोपाई के मालिक, ईस्ट इंडिया कंपनी के हिस्सेदार और अन्य वाणिज्यिक व्यावसायिक प्रबंधक एजेंसी के मजदूर, रेलवे निर्माता, बिल्डर्स, असैनिक और सैनिक कर्मचारी विभाग, और अन्य जो भारत के साथ जुड़े हुए थे, वे काफी अमीर हो गए। लेकिन जो लाभ ब्रिटेन को था, वह संपूर्णता में बहुत थोड़ा था। मेरे चाचाजी की भविष्यवाणी गलत सिद्ध हुई। ब्रिटेन भारत को खोने के बाद गरीब नहीं हुआ। इसके बदले 1950-60 में इसने घटिया समृद्धि का उपभोग किया, उस समय वह अपने उपनिवेश खो रहा था। फ्रांस, हॉलैंड और अन्य उपनिवेशवादियों के साथ भी यही हो रहा था। वास्तविकता यह थी कि ब्रिटेन की समृद्धिध भारत के शोषण पर आधारित नहीं थी। बहरहाल, ब्रिटेन दरिद्र था या भारत समृद्ध यह एक अकादमिक प्रश्न है। ज्यादा प्रासंगिक क्या है, यह कि भूमंडलीय पूंजीवादी शक्ति था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में और बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में व्यापक वृद्धि हुई लेकिन भारत में विकास को मुक्त नहीं किया जैसा कि उन्होंने जापान में किया, रेलवे के तेजी से विकास, नहरें और विदेशी व्यापार का व्यापक विस्तार एक मजबूत इंजन की तरह। भारत के पास अनुभवी व्यापारी वर्ग था जिसने आधुनिक उद्योग को विस्तार प्रदान किया।

1914 तक भारत विश्व में जूट उत्पादन का सबसे बड़ा उद्योग था, चौथा सबसे बड़ा कपास उद्योग, सबसे बड़ा नहरों का जाल, तीसरा रेलवे का सबसे बड़ा जाल और विश्व व्यापार में ढ़ाई प्रतिशत का हिस्सा। पचास साल पहले कार्ल मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि भारत में रेलवे और आधुनिक फैक्टरियों का प्रवेश उपमहाद्वीप को बदल देगा। यह क्यों नहीं हुआ? भारत आजादी के समय उद्योगविहीन और बहुत गरीब बनकर ठहर गया था। आजादी के समय आधुनिक उद्योग ने राष्ट्रीय आय का केवल साढ़े सात प्रतिशत भाग का सहयोग दिया और पैंतीस करोड़ जनसंख्या में

से कठिनाई से केवल पचीस लाख लोगों को धंधे में लगाया। क्यों एक औद्योगिक क्रांति नहीं हुई थी?

मेरे पिताजी के अंग्रेजी बॉस और अन्य उपनिवेशवादी अधिकारी भारत की गरीबी के लिए अन्य संसार को हिंदू जीवन की आध्यात्मिकता और भाग्यवादी विश्वास को उत्तरदायी ठहराते थे। जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने भारत की अमीरी, जातिवाद के विकास के प्रतीक की अनुपस्थिति की प्रशंसा की। गुन्नार मिरडाल ने यह पाया कि भारत की कम उत्पादकता, साधारण उत्पादन प्रणाली और जीवन के निम्न स्तर का महत्वपूर्ण कारण सामाजिक सिद्धांत और विचारधारा थी। मिरडाल के अनुसार काम का खराब नियंत्रण, हाथ के काम की अवमानना, समय की पाबंदी, जागरूकता और महत्वाकांक्षा की कमी, सहयोग के लिए कौशल और अंधविश्वास, जो व्यवहार को रोकने का परिणाम थी। ये अपक्षपाती अवस्था से संयोजित किए गए, जैसे कमजोर स्थल, कार्यकाल का समूह, कुशलता और पब्लिक प्रशासन की अखंडता के स्तर में कमी, स्थानीय व्यवसाय में लोगों की कमजोर हिस्सेदारी, सख्त और असमान सामाजिक ढांचा। मिरडाल को विश्वास था कि पूर्व आधुनिक व्यवहार और संस्थान पर सीधा आक्रमण करना था, मुख्यतः शिक्षा के द्वारा और भारत इस बढ़त और आय की असमानता को मिटाने का इंतजार नहीं कर सकता था। उसने महसूस किया कि गतिहीनता के बल को तोड़ने का एकमात्र साधन भारतीय राज्य थे। उसने निर्णय लिया कि भारतीय सरकार इसको करने में समर्थ नहीं थी क्योंकि वह एक मंद, सख्त राज्य था। यह उस सामाजिक अनुशासन को लागू करने में सक्षम था जिसे वह चाहता था, उसने यह 1867 में कहा और भारतीय राज्य तब से सरल बना हुआ है।

एक अन्य अर्थशास्त्री दीपक लाल ने भी आर्थिक स्थिरता को जातिवाद-व्यवस्था से घिरे 'निम्न स्तरीय हिंदू साम्य' के चरणों में स्पष्ट किया, जिसमें राजनीतिक संघर्ष में स्थिरता, मानसून की असफलता और जलवायु अस्थिरता, श्रमिकों के परिश्रम में कमी और कम महत्व के व्यापारी वर्ग

शामिल थे। लाल ने बहस की कि भारत का सामाजिक संगठन और कृषि समूह जो दूसरा बढ़िया व कुशल विशिष्ट वातावरण था। हार्वर्ड के आर्थिक इतिहासकार डेविड लेडीस ने हाल ही में भूगोल और मौसम से संबंधित गलत राजनीतिक वाद-विवाद को फिर से खोला। उसने भारत की शक्ति का हरण करने वाली गर्मी को उत्तरदायी ठहराया। इसके कारण, अमीर क्षेत्र तापमान के क्षेत्र में पड़ते हैं और गरीब उष्णकटिबंध और अर्धउष्णकटिबंध क्षेत्रों में। उसने कहा कि इसके अलावा वातानुकूलन और उष्णकटिबंधीय दवाइयों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद खेल के मैदान को लगभग समतल कर दिया (और दक्षिण अमेरिका की समृद्धि को संभव किया)। अप्रिय सत्य यह है कि प्रकृति की तरह जीवन अपने पक्ष में अन्यायपूर्ण और असमान है और भूगोल बुरे समाचार लाता है।

मैं आसान संस्कृति या भौगोलिक स्पष्टीकरण के बारे में हमेशा शंकित रहता हूं। मेरे अनुभव में, संपन्न हिंदू उद्यमी उग्र, धार्मिक और व्यापार में आक्रामक हो सकता है। जैसे ही हरित क्रांति की घोषणा हुई, भारतीय किसानों ने जल्दी ही बाजार पर आधारित प्रोत्साहन पर प्रतिक्रिया व्यक्त की। पारंपरिक उत्तर प्रदेश में अगर जरूरत पड़ी तो ब्राह्मण अपने खेतों को खुद जोतेंगे और राजपूत ठाकुर अपने सामंती तरीके छोड़ देंगे, व्यावसायिक अवसर छोड़ देंगे। इसके अतिरिक्त भारत में संतोषजनक स्थिति में गैर हिंदू थे और ये समुदाय स्थिरता की मस्ती से भी चिपके हुए थे। अन्य एशियाई देश जैसे चीन और इंडोनेशिया समान रूप से पिछड़े हुए थे, लेकिन उनके पास अपनी स्थिरता को समझने के लिए 'हिंदू संतुलन' नहीं था। उष्णकटिबंधीय होने व प्रकृति की नाइंसाफी के बावजूद भी सिंगापुर ने पश्चिमी समृद्धि का स्तर प्राप्त किया।

आर्थिक इतिहासकारों ने भारत की संस्कृति में आर्थिक पिछड़पेन के स्पष्टीकरण का पता नहीं लगाया। जो था, हिंदुओं की अन्य सांसारिक उपयोगिता जातिवाद के प्रभाव को गतिहीन करना या व्यापारी वर्ग की कट्टरपंथी आदतें। बाजार का आकार, पूर्तिकर्ताओं की क्षमता, उत्पादन का

मूल्य, वितरण की परेशानियां, तकनीक की उपलब्धता और प्रतिस्पर्धा की स्थिति व्यापारियों को व्यापार में व्यय करने के लिए प्रेरित करते। अमिय कुमार बागची ने बहस की कि प्रभावी मांग की कमी ने व्यापारिक अवसरों को सीमित कर दिया। उसने कहा कि भारतीय आधुनिक सामान और सेवाओं को खरीदने में बहुत गरीब थे। कमजोर क्रय-शक्ति के साथ बाजार बहुत छोटा रह गया और इसने उद्यमियों को व्यय करने से बचाया। हालांकि मैं निश्चित नहीं था कि मांग की कमी एक पर्याप्त कारण थी। अगर भारतीय घरेलू बाजार छोटा था, उद्यमी इसको समुद्र पार बाजार के लिए उत्पन्न करके पूरा करते थे। मॉरिस. डी. मॉरिस ने कहा कि पिछड़ापन आपूर्ति पर प्रतिबंध का परिणाम है। उसने महसूस किया कि भारतीय उद्यमी तकनीकी की कमी, कुशल और पूंजी में भयानक अनिश्चितता से हैरान थे। रजत रे के अनुसार, भारतीय व्यापारी निर्यात नहीं कर सकते थे क्योंकि वे निम्न कोटि के उत्पाद बनाते थे, जो विश्व बाजार में स्वीकार्य नहीं थे और उनके पास उत्तम उत्पाद बनाने के लिए तकनीक नहीं थी। उसके दृष्टिकोण में एकमात्र सबसे बड़ी कमजोरी भारतीयों का टेक्नोलॉजी में पिछड़ापन ही था। विडंबना यह रही थी कि सौ साल बाद भी वही स्थिति बनी रही।

इस प्रकार भारत के पिछड़पेन का कोई सीधा उत्तर नहीं था। राष्ट्रवादियों से अलग मैं यह विश्वास नहीं कर सकता था कि भारत में कम निवेश करने में या भारत के व्यापारिक हितों को ध्वंस करने में ब्रिटेन का कोई षडयंत्र था। (जी.डी. बिड़ला की स्कॉटिश लॉबी के साथ परेशानियों के बावूजद) राष्ट्रवादी धारणा कमजोर है क्योंकि ब्रिटिश व्यापार एक समजातीय शक्ति नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी में बंबई की कपड़ा मिलें विश्वास, तकनीकी सहायक और ब्रिटिश कपड़ा मशीनरी बनाने वालों की मशीनों के साथ बनी जबकि ये मिलें मैनचेस्टर की मिलों के लिए एक प्रतियोगी खतरा थीं। एक यूरोपियन कंपनी बर्न एंड कं., ने जब यह पाया कि भारत में भाप के बर्तन ब्रिटेन से आयात करने के मुकाबले बनाना ज्यादा सस्ता है तो उसने ये बर्तन बनाने शुरू

कर दिए। ये जहां भी लाभ मिलना हो, वहीं पर निवेश करते हैं और उनके निर्णयों का राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता और जातीय विचारों से बहुत कम लेना-देना होता है। कंपनियां केवल अपनी निचली रेखा को ही देखती हैं और अपनी उद्गम कंपनियों का झंडा नहीं फहराती हैं।

तब भारत में ब्रिटिश शासन पर क्या अभिनिर्णय है? क्या ब्रिटिशों ने भारत को निर्धन किया? इसमें कोई संदेह नहीं कि अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटिशों ने भारत में लूटमार मचाई और इसकी धन-संपदा को लूट लिया, जैसा कि इतिहास में सभी विजेताओं ने किया था। अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि अंग्रेजों ने नियमित रूप से अपने उपनिवेश का शोषण किया लगातार चलती संस्थाओं के द्वारा जो भारत के अहित के लिए थीं। लेकिन यह उपनिवेशवाद की प्रकृति और सिद्धांत के अंतर्गत था। मैंने पहले ही कहा था कि अंग्रेजों ने भारत को विचारपूर्वक उद्योगरहित नहीं किया। यह औद्योगिक क्रांति थी जिसने कि लाखों बुनकरों को काम से निकाल दिया था जब नई तकनीक भारत पहुंची। यह तो किसी भी प्रकार होना ही था। ब्रिटिश सरकारी नीति व्यापार व्यवधान को खड़ा करके इस प्रतिघात को लचीला बना सकती थी। परंतु हथकरघों की रक्षा करना ज्यादा-से-ज्यादा एक अस्थाई समाधान ही होता।

भले ही यह विचित्र लगे, लेकिन अंग्रेजों ने भारत का पर्याप्त शोषण नहीं किया। यदि इसने भारत में महाकाय निवेश किया होता जैसा कि इसने अमेरिका में किया था तो भारत बहुत खुशहाल और बहुत बड़ा बाजार हो गया होता। ब्रिटिश वस्तुओं के लिए गरीब भारत निश्चित रूप से ब्रिटेन के आर्थिक हित में नहीं था। दुख तो यह था कि भारत को विकसित करने में असफल होना एक बहुत भारी नुकसान था। ग्रेट ब्रिटेन और साथ ही भारत के लिए अमीर भारत कहीं बेहतर उपभोक्ता, एक बेहतर सप्लायर और साम्राज्य का ठोस आधार होता। हमारे राष्ट्रवादी यह समझने में असफल रहे कि पूंजी एक आगे बढ़ाने वाली और सुनिश्चित शक्ति है चाहे शोषण करने वाली प्रतीत हो। मार्क्स यह समझ गया था, वह जानता था कि केवल पूंजीवाद ही पूंजी संचित करने

का प्रभावी मार्ग है, निवेश करने का, उत्पादन बढ़ाने का और उत्पादकता बढ़ाने का भी। आज भी, अधिकतर भारतीय अपनी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के डर से यह नहीं समझते हैं।

ब्रिटेन की मुख्य असफलता थी उदासीनता, जब विकास और आर्थिक वृद्धि की बात हो। जापानी सरकार से अलग, 1968 के मेजी सुधारों के बाद जिसने सक्रिय रूप से देश के विकास को प्रोत्साहित किया। इसने सक्रिय रूप से न तो भारतीयों द्वारा और न ही अंग्रेजों द्वारा निवेश को प्रोत्साहित किया। इसने भारतीय जनसाधारण को शिक्षित करने की कोशिश की। स्वतंत्रता के समय तिरासी प्रतिशत भारतीय अशिक्षित थे। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने शिक्षित भारतीयों की केवल ऊपरी परत उत्पन्न की।

जापानियों और कोरियाइयों ने इसी समय के दौरान, अपने साधारण समाज को शिक्षित करने पर ध्यान केंद्रित किया। 1950 तक, जापान और कोरिया की आधे से अधिक जनसंख्या शिक्षित थी। हालांकि इसने रेलवे और नहरों का निर्माण किया। ब्रिटेन ने पूंजी से निर्धन देश में उद्यमकर्ताओं और किसानों को ऋण उपलब्ध कराने का प्रयास नहीं किया और न ही इसने शिशु रूप में भारतीय उद्योगों, जो उन्नीसवीं शताब्दी में उभरे थे, की पर्याप्त रक्षा की। (यद्यपि इसने 1921 से आगे किया) तब "किसी भी उपनिवेश शक्ति ने अपने उपनिवेश के औद्योगीकरण में मदद की।"

सच यह है ब्रिटिश यह नहीं जानते थे कि किस प्रकार अर्थव्यवस्था की वृद्धि की जाती है, वे केवल यह जानते थे कि किस प्रकार बजट को संतुलित रखा जाता है।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने भारतीय संपत्ति और गरीबी पर ब्रिटिश के प्रभाव का अधिमूल्यांकन किया। धन सुनिश्चित करने के लिए मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी में वहां भारत से ब्रिटेन में संपत्ति का विकास हुआ।

बचत को भारत में दोबारा से निवेश करने की बजाए उन्होंने हमारे निर्यात की कमाई व हमारी धन-संपत्ति को ब्रिटेन स्थानांतरित किया। यह भी सच था कि भारत प्रगतिशीलता के कच्चे माल

का निर्यातक और निर्मित उत्पाद का आयातक बनता जा रहा था। भारतीय नेता इसका यह मतलब लेते थे कि विदेशी व्यापार और विदेशी मुद्रा हमारी गरीबी और हमारी अर्थव्यवस्था को बंद करने और आत्मनिर्भर बनाने की नीति को अपनाने के लिए जिम्मेदार है। वे यह भूल गए थे कि अंग्रेजों के आने से सदियों पहले भारत की व्यापार करने की अपनी पुरानी परंपराथी और जिसने कि एक बार आयात और निर्यात की समृद्धि का विशाल रूप से उपभोग किया था। इन और अन्य कारणों से हमारी विश्व अर्थव्यवस्था में भाग लेने के लिए अपनी योग्यता के प्रति निराशावादी थे। और हमने अपने ऐतिहासिक उत्कर्ष को एक महान व्यापारिक राष्ट्र के रूप में दोबारा हासिल किया। हमने अपने दरवाजे बंद कर लिए। और हमारा विश्व व्यापार में हिस्सा 1947 में 2.4 प्रतिशत से 1990 में 0.4 रह गया। हमने इतिहास से गलत पाठ पढ़ा।